Paper Name : Philosophy, Religion, and Culture in Sanskrit Tradition
Class : DSE Sanskrit
Semester : VI
Teacher Name : Dr. Neelam Gaur

त्रिविध कर्म

त्रिविध कर्म का अर्थ है – तीन प्रकार के कर्म। इस विषय के विवेचन से पहले कर्म क्या है इसको जानना आवश्यक है। कर्म का सामान्य अर्थ है – क्रिया /करना। गीता में कर्म शब्द इस प्रकार परिभाषित किया है– ''शरीरवाड्.मनोभिर्यत्कर्म'' गीता. 18.15 । अर्थात् जो शरीर, वाणी और मन से की गई क्रिया है वह कर्म है। अतः जाना , खाना, पीना, नींद, चिंतन आदि सभी क्रियाएं कर्म हैं। इसी को उद्देश्य करके गीता में कहा गया कि मनुष्य बिना कर्म के एक क्षण भी नहीं रह सकता।

न कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। गीता. 3.5 ।

गीता में कर्म का बहुत गम्भीर विवेचन किया गया है। ''गहना कर्मणो गतिः'' कहते हुए कर्म का स्वरूप तीन प्रकार का बताया– कर्म, अकर्म और विकर्म।

कर्मणा ह्यापि बौद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बौद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ।। गीता. 4.17।

यहां कर्म, अकर्म और विकर्म को समझते हैं–

कर्म – कोई भी कार्य जो मन, वचन या शरीर से किया जाए वह कर्म कहा जाता है।

अकर्म – कोई भी कार्य जब अनासक्त भाव से किया जाए, बिना फल की इच्छा के किया जाए तो वह अकर्म कहलाता है।

विकर्म – कोई भी कार्य जो माता पिता विरोधी, समाज विरोधी हों अर्थात् शास्त्र निषिद्ध हों वे सब विकर्म कहलाते हैं।

महाभारत में भी कर्म को गम्भीर विषय बताते हुए कहा है–

कृतं हि यो अभिजानाति सहस्रे सो अस्ति नास्ति च। म0भा0 वनपर्व 32.9।

अर्थात् हजारों में कोई एक ही होगा जो कर्म को अच्छी प्रकार करना जानता हो।

गीता के 18 वें अध्याय में प्रकृति के तीन गुणों के आधार पर त्रिविध कर्म बताए गए हैं लेकिन उससे पहले तीन प्रकार का कर्मसंग्रह कहा गया है–

करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः। गीता. 18.18

अर्थात् कर्म– जो खाना, पीना आदि क्रियाएं हैं, कर्ता– जो इन क्रियाओं को करने वाला है और करण– जिन साधनों से मन , बुद्धि आदि से कर्ता द्वारा क्रियाएं की जाती हैं––––––– इन तीनों कर्ता, कर्म व करण के संयोग से कर्म का संग्रह होता है।

प्रकृति के तीन गुण – सत्व, रजस् और तमस् के आधार पर गीता में त्रिविध कर्म सात्विक, राजसिक और तामसिक कर्म कहे गए हैं।

सात्विक कर्म– ऐसा कर्म जो शास्त्रोक्त हो, अभिमान से रहित होकर और फल न चाहने वाले मनुष्य द्वारा बिना राग द्वेष के किया गया हो वह सात्विक कर्म कहलाता है।

नियतं सङ्.गरहितमरागद्वेष्तः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्विकमुच्यते।। गीता. 18.23

राजसिक कर्म – ऐसा कर्म जो बहुत परिश्रम से युक्त हो, भोगों को चाहने वाले मनुष्य द्वारा और अहं भाव से युक्त होकर किया जाता है वह राजसिक कर्म कहलाता है।

यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्.कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजमुदाहृतम् ।। गीता. 18.24

तामसिक कर्म – ऐसे कर्म जो परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को विचारे बिना केवल अज्ञानता से आरम्भ किए जाते हैं वे तामसिक कर्म कहलाते हैं।

अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते।। गीता. 18.25

प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थों में अनेक प्रकार से त्रिविध कर्म का विवेचन मिलता है। भारतीय संस्कृति में कर्म, कर्मफल और पुनर्जन्म सिद्धान्त को बहुत महत्व दिया गया है। कहा भी गया है – ''अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्'' अर्थात् शुभ अशुभ किए गए कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। गीता में भी पुनर्जन्म सिद्धान्त को मान्यता देते हुए कहा गया है– ''जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च''। महाभारत में तो विशेष रूप से कहा गया है कि पूर्व जन्म के कर्म अपने कर्ता को उसी प्रकार पहचानकर उसके पास पहुंच जाते हैं जैसे सहस्रों गायों के झुण्ड में भी बछड़ा अपनी मॉ को पहचान कर उसके पास पहुंच जाता है।

यथा धेनु सहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति ।।

प्राचीन ग्रन्थों में कर्मफल और पुनर्जन्म सिद्धान्त को उद्देश्य करके ही त्रिविध कर्म का महत्वपूर्ण वर्गीकरण संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म और क्रियमाण कर्म के आधार पर किया जाता है।

संचित कर्म – संचित का अर्थ है एकत्रित, इकट्ठा, संचय किया हुआ। संचित कर्म वे कर्म हैं जो अनेक पूर्व जन्मों में किए गए हैं , ये अनन्त हैं क्योंकि हमारे अनन्त जन्म हो चुके हैं और नए नए कर्म एकत्रित होते रहते हैं। गीता में भी कहा है– '' बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन, तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।'' ईश्वर और जीव के अनन्त जन्म हो चुके हैं जीव के अनन्त कर्मों के बारे में ईश्वर जानते हैं लेकिन जीव को उनका ज्ञान नहीं हो पाता है। इस प्रकार संचित कर्म हमारे ही किए अनेक जन्मों के पाप–पुण्य कर्मों का संग्रह होता है।

प्रारब्ध कर्म – प्रारब्ध को दैव या भाग्य के नाम से भी जाना जाता है। प्रारब्ध कर्म संचित कर्मों का वो थोड़ा सा अंश मात्र कर्म होते हैं जिनका फल वर्तमान जीवन में भोगना होता है।प्रारब्ध के विषय में

वाल्मीकि रामायण में अनेक स्थानों पर वर्णन मिलता है। जैसे – ''सुखदुःखे भयक्रोधौ लाभालाभौ भवाभवौ, यस्य किंचित् तथाभूतं ननु दैवस्य कर्म तत्।'' अर्थात् सुख दुःख आदि धटनाएं दैव के ही खेल हैं। रा0 अयो0 का0 22.22

''असंकल्पितमेवेह यदकस्मात् प्रवर्तते, निवर्त्यारब्धमारम्भैर्ननु दैवस्य कर्म तत्।'' अर्थात् जो कुछ बिना विचारे अचानक घटता है और प्रयासपूर्वक प्रारम्भ किए हुए कार्यों को रोककर नई दुर्बोध स्थिति उत्पन्न कर देता है, अवश्य ही यह दैव का ही विधान है। रा0 अयो0 का0 22.24

इसका अर्थ तो यही हुआ कि जो हमारे साथ घटित हो रहा है उस पर हमारा नियंत्रण नहीं होता, लेकिन यह पूर्णतः सत्य नहीं है, यदि ऐसा हो तो मनुष्य कर्म के लिए प्रेरित ही नहीं हो सकता। प्रारब्ध अकर्मण्यता का पक्षधर कदापि नहीं है अपितु यह कर्मफल की निश्चितता को सिद्ध करता है। अघ्यात्म शास्त्र के अनुसार मानव जीवन 65 प्रतिशत प्रारब्ध से और 35 प्रतिशत क्रियमाण कर्म से नियंत्रित होता है लेकिन मानव क्रियमाण कर्म के प्रतिशत से उचित कर्तव्यों को करता हुआ अपने प्रारब्ध पर विजय पाने में सक्षम है। इसीलिए मानव जीवन को ही सभी योनियों में श्रेष्ठ जीवन माना गया है।

क्रियमाण कर्म– क्रियमाण कर्म का अर्थ है वर्तमान में किए जाने वाले कर्म। ये ही संचित और प्रारब्ध का आधार हैं। क्रियमाण कर्म को करने में मानव स्वतंत्र है। ये शुभ और अशुभ दो प्रकार के होते हैं। इनमें शास्त्रोक्त कर्म शुभ कर्म कहलाते हैं और शास्त्र निषिद्ध कर्म अशुभ कर्म कहे जाते हैं। क्रियमाण कर्म के संस्कार भी शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकार के होते हैं। पूर्व जन्म के शुभ कर्मों से शुद्ध संस्कार और अशुभ कर्मों से अशुद्ध संस्कार प्राप्त होते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि क्रियमाण कर्म करना ही मानव के नियंत्रण में है, कर्मफल उसके नियंत्रण से बाहर है। कर्मफल के लिए वह पराधीन है ईश्वर के या कहें काल की शक्ति के।

इस प्रकार संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण त्रिविध कर्म के विवेचन से निष्कर्ष रूप में गीता का वही श्लोक मान्य है जिसमें कहा गया है – कर्म करने में ही तेरा अधिकार है, कर्मफल में कदापि नहीं।

''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन, मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्.गो अस्त्वकर्मणि।''